Kristu Jayanti Journal of Humanities and Social Sciences
Volume 1, 2021, pp. 61–72

आधुनिक हिन्दी नाटकों में समाजिक तत्व

(Social Values in Modern Hindi Plays)

-डॉ. श्रीधर पी डी,

विभागाध्यक्ष्य-हिन्दी अध्ययन विभाग

क्रिस्तु जयन्ती कालेज, के.नारायणपुरा, कोत्तनूर पोस्ट,

बेंगलूरु-560077

प्रस्तावना :

श्रव्य काव्य का परिचय हमें गुरु जनों या बुजुर्गों से प्राप्त हुई है। इसी श्रव्य काव्य का संबन्ध दृश्य काव्य से है। दृश्य काव्य को सामान्य भाषा में नाटक तथा शास्त्रीय भाषा में रूपक कहा जाता है। पद्य और गद्य का मेल होकर, सशक्त और प्रभावी रूप में पाठक या प्रेक्षक के सामने प्रस्तुत, विशेष संवादी साहित्य प्रकार को ही दृश्यकाव्य कह सकते है अथवा हम यह तय कर सकते हैं कि, नाटक साहित्य को न पहचाननेवाले इस लोक में कोई नहीं हैं। नाटक या एकांकी का उद्भव और विकास श्रव्य काव्य और दृश्यकाव्य दोनों रूप में हुआ है। माना जाता है लिपि का उपयोग जब प्रारम्भ नहीं हुआ था, तब श्रव्य काव्य ही दृश्यकाव्य का रूप लेकर संपर्क सेतु बना हुआ था। मान सकते हैं कि नाटक का जन्म भी ऐसा ही हुआ होगा। संघर्ष मानव जीवन का मूल गुण तथा विकास का जरिया है। इसी प्रकार का जीवन से जुडा संघर्ष ही समाज, व्यवस्था, नियम, देश, संस्कृति, व्यक्तित्व जैसे विषय, नाटक या एकांकी के रूप में रंगभूमि या मंच पर व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत होते आ रहे हैं। समय के अनुसार मनुष्य में विशेष प्रकार का सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का बोध जागृत हुआ। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए, अपने जीवन हित हेतु मनुष्य को संघर्ष करना पड़ा।[1] इसी संघर्ष के बीच समाज में वर्ग-

[1] डॉ. दिलीप मेहरा, दृश्य-श्रव्य माध्यम विविध परिप्रेक्ष्य, पृष्ट. सं. 24

विभाजन, शक्ति तथा धन के माध्यम से प्रभुता स्थापित करने का प्रयास होता दिखा। उस समय मानवीय संबन्धों का विशेष रूप से परिमार्जन और परिवर्तन निरंतर होने लगा। इस बदलाव की स्थिति में समाज में मनुष्य की प्रतिष्ठापना का अर्थ अनेकों प्रकार से बदलने लगा। साहित्यकार अपने सृजन में उन परिवर्तनों को अंकित करते आ रहे हैं। इन आधारों पर ही प्रत्येक काल से संबन्धित सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि संर्घर्षों का परिचय हमें प्राप्त होते आ रहे हैं।[2]

विवेक और चेतना से ही मनुष्य विचार संपन्न होता है, दुनिया में प्रत्येक सामाजिक सुविचारवान् साहित्य मानवीय विचारों को प्रभावित करता है। इसमें किस प्रकार विचारधारा समाजमुखी है, और किस प्रकार की विचारधारा समाज के विरुद्ध है यह तय करना श्रीसामान्य के लिए अत्यंत कठिण है। इसी अज्ञान के कारण हमें सहिष्णुता और असहिष्णुता में फर्क नज़र नहीं आता। जाती और स्वार्थ के कारण हम सहिष्णुता और असहिष्णुता दोनों में तड़पते और तड़पाते रहते हैं। मेरा मत यह है कि वेद-उपनिषद् तथा रामायण-महाभारत जैसे महाकाव्यों के धरातल पर निर्मित भारतीय साहित्य और संस्कृति, विदेशी आक्रमणों से प्रताडित होकर, पाश्चात्य अंधानुकरण में उन्मत्त होकर, वादों के विवादों में गिसपिटकर, आधुनिकता में अंधा बनकर, जातिवाद की मूर्खता में राजनेता बनकर, नौकरशाही के साम्राज्य में महा पवित्र भ्रष्टाचारी होकर, ज्ञान मार्ग पर संकुचित होकर, वाम मार्ग स्वार्थी बनकर एक अपनी ही प्रकार की विकृति की ओर बड़ रही है। आज युआवों में जाती और राजनीति के प्रति निरासक्ति और कर्तव्य के प्रति आसक्ति की एक आशा की किरण दिखई देती है तो, दूसरी ओर विदेशी और पाश्चात्य संस्कृति की ओर अंधा आकर्षण उनके अज्ञान को दर्शाती है। इस प्रकार का कुप्रभाव 21 वी सदी के नाटककारों को भी नहीं बक्शा है। अधुनाथन आधुनिकता के प्रभावी इस समय में उपस्थित सभी साहित्यप्रमी और पाठकगण को इस ओर आकर्षित करना अनिवार्य है।

21 वीं सदी में प्रकाशित नाटक साहित्य को समझने के लिए समय की कमी महसूस होती है। क्योंकि, हमारे जीवन को टीवी रिमोट, कंट्रोल कर रहा है और इंटरनेट हमें फसाने के लिए जाल बुन रहा है। इनके जाल में लिपटे नाटककार का उद्धेश्यको और उस दृश्यकाव्य को झेलनेवालों की जिज्ञासा के बीच में संबन्ध करवाना,

[2] डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय, हिन्दी नाटक एवं रंगमंच, पृष्ट. सं.37

साथ ही साथ उन संबन्धों को, विद्वानों के सम्मुख चर्चा हेतु उपस्थित करना, मेरे लिए पहाड़ को खोदने के बराबर हुआ है।[3] पहाड़ खोदने के बाद अंत में अंधकार रूपी समाज के समुंदर में हाथ मार रहा हूँ। साहित्य के संबन्ध में चाहे सोडा गिलास से भी, मोटा चशमा डालकर गूगल करलो, दक्षिण के लेखकों को, अजीब सा डर बना रहता ही है। क्योंकि, उत्तर के ज्ञानी, हिन्दी साहित्य के उत्तराधिकारी हमें व्यंग्य हसी के साथी सुनते रहते हैं। फिर भी दिखावे के धैर्य के सहारे 21वीं सदी के नाटक साहित्य के संबन्ध में, कुछ स्वरचित शीर्षक और उपशीर्षकों के साथ जुगुनु के जैसे, फिल्मी रंगों से लिप्त नाटक अथवा दृश्यकाव्य को देखने का, मैंने यहाँ प्रयत्न किया है।

वेद, उपनिषद और पुराणों से संबन्धित कथवस्तुवाला नाटक साहित्य का विश्लेषण :

समस्त साहित्यिक अभिव्यक्तियों में नाटक को सर्वोपरी स्थान प्राप्त हुआ है। कारण यही है कि, इसमें काव्यानन्द के साथ अन्य कलाओं का अनन्द भी प्राप्त होता है। वस्तुत: नाटककार किसी पात्र के द्वारा अपना मन्थव्य या अमृत समान विष को पेक्षक के सम्मुख परोसता रहता है। कला कला के लिए है? या जीवन के लिए है ? दृश्यकाव्य में इस प्रश्न का उत्तर कुछ इस प्रकार मिलता है - काव्यनन्द की उत्कृष्ट स्थिति में पहुँचकर, नाटक के उपभोक्ता को, जीवन और कला में पवित्र मिलन दिखाई देता है। भरतमुनी के मतानुसार – नाटक दैत्य और देवताओं का, दोनों के भले-बूरे कार्यों का, उनके भावनाओं का, चेष्टओं का समावेश होता है। यह नाट्य तीनों लोकों के, भावों का अनुकीर्तन होता है। इसमें उत्तम, मध्यम और अधम सभी प्रकार के चरित्रों का दर्शन होता है। सातों द्वीपों के वासियों, देवताओं, ऋषियों, राजाओं और कुटुम्बियों के कार्यों का अनुकरण जहाँ देखने को मिलता है वहीं नाटक होता है। नाटक रचना का उद्धेश्य और कथावस्तु को प्रारंभ, प्रयत्न, प्राप्याशा, नियताप्ति और फलागम नामक पाँच कार्यावस्थाओं को, पार करना पड़ता है। संवाद नाटक का प्राण तत्व है। नटना कौशल और रंगमंच पर प्रस्तुति, नाटक का यश या सफलता को निर्धारित करती है।

---

[3] डॉ. टी. साबु, मोहन राकेश के नाटकों के पात्र: मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, पृष्ट. सं. 80

"नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पंचसंधि समन्वितम् ।

विलासद्धर्यादि तद्दूणदद्युक्तं नाना विभूतिभि:।।

सुख दु:ख समुद्भूति नानारस निरंतरम।

पंचादिका दश परास्त्रांका: परकीर्तता।।"[4]

मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्शा या अवमर्शा, निर्वहण या उपसंहार नामक पाँच संधियाँ नाटक को विभाग करते हैं, नाटक के प्रकार, नाटक में वज्र्य विषय और नाटक की सार्थकता, और नाटक के प्रति पाश्चात्य और भारतीय विचारधाराओं को समझने से, पाठक प्रबुद्ध पेक्षक बन जाता है। भारतीय आलोचकों ने नाटक के पाँच तत्त्व निर्धारित किये हैं- वस्तु, पात्र, रस, अभिनय और वृत्ति। पाश्चात्य आलोचक वस्तु, पात्र, कथोपकथन, देशकाल, शैली और उद्धेश्यनामक छ: तत्त्व का वर्णन करते हैं। डॉ. दशरथ ओझा के अभिप्राय में 1281 में लिखा गया गयसुकुमाररास को हिन्दी का प्रथम नाटक मानते हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी द्वारा 1930 में लिखगया वैदिकी हिंसा हिंसा न भवती हिन्दी को पहला मौलिक नाटक माना जाता है।

धर्म, वर्ण, जाती, परम्परा, विरासत, संस्कृति, पुराण, तत्त्व, भक्ति, ध्यान, योग, याग, तप, नीति, गुणावगुण, संबन्ध, दोस्ती, दुश्मनी जैसे मानव के सभी पहलुओं को नाटक में दर्शाया जा सकता है। रामायण और महाभारत में आनेवाले सभी पात्रों और घटनाओं को हम व्यष्ठि रूप में देखेंगे तो, इन महाकाव्यों को परखने की राह में पेक्षक या पाठक की जिज्ञासा में कमी ही कह सकते हैं। क्योंकि, जितनी घटनाओं तथा पात्रों के वैचित्र्य को, हम रामायण और महाभारत में देखते हैं, आजके सभी घटनाओं और व्यक्तियों से उनका संबन्ध करा सकते हैं। डॉ. पशुपति उपाध्यायजी द्वारा 2012 में प्रकाशित हिन्दी नाटक एवं रंगमंच ग्रन्थ में कहते हैं कि- अत्यन्त प्रखरता, सहजता एवं स्वाभाविकता के साथ मुखरित और विकसित होने वाली नाट्य विधा, मानवीय मूल्यों और जीवनादर्शों की प्रस्तुति और अभिव्यक्ति करवाती है।

---

[4] राजकिशोर सिंह एवं दुर्गाशंकर, भारतीय और पाश्चात्य काव्य शास्त्र, पृष्ट सं- 150

श्री कृष्ण बलदेव वैद जी के प्रकाशित भूख आग है-1998, हमारी बुडिया-2000, मोनालिजा की मुस्कान-2003, परिवार आकड़ा-2002, कहते हैं जिसको प्यार-2004 - जिनमें अधुनिक जीवन के प्रति विडम्बना, स्त्री-पुरुष संबन्ध और अनेक अस्पष्ट उद्धेश्यरहित जीवन पर करारा व्यग्य किया गया है। यहाँ नाटककार का मूल उद्धेश्य ही समाज सुधारण है।[5]

श्री नरेन्द्र मोहन जी के प्रकाशित अभंगगाथा-2000, और मिस्टर जिन्ना-2005 नाटकों में देश विभाजन, संतो का जीवन में सत्यान्वेशन, शोषण, वर्ग और वर्ण संघर्ष पर केन्द्रीकृत हैं। 2004 में श्री मीराकांत के नेपथ्य युगनाटक में स्त्री शोषण को मुख्य विषय माना है। श्री जयप्रकाश राजजी पुरोहित के 2007 में प्रकाशित विजयधर्मा नाटक में मातृभूमि की प्रतिष्ठा को ध्यान में रखते हुए राष्ट्र धर्म निर्वहण के बारे में बताया गया है।[6]

जी.जे. हरिजीत जी का संभवामी युगे युगे- नाटक में महाभारत की कथावस्तु का आधुनिक दृष्टिकोन में विश्लेषण करने का प्रयत्न किया गया है। इस नाटक में नाटककार का देशप्रेम, राष्ट्रीय चिंतन और सामाजिक उत्तरदायित्व की झाँकी मिलती है। उनकी प्रत्येक रचनाओं में राजनीति पर व्यंग्य रहता है। इस नाटक की रचना का उद्धेश्यहैं कि- वर्तमान शासन प्रणाली में सुधार लाना, भारतीय संस्कृति का उत्थान, जनता में राष्ट्र के प्रति जागृति पैदा करना और अन्याय का विरोध करना है। समय रहते हम सब लोगों को सचेत करनेवाले हरिजीत जी हमें अपने आत्मविश्लेषण के लिए विवश कर देते हैं।

शंकरशेष जी का एक और द्रोणाचार्य- नाटक में मध्यम वार्गीय परिवार में तड़पता एक लक्चरर, भ्रष्ट समाज, चापलूस दोस्त, स्वार्थ समाज, भटके हुये युवावर्ग, गरीब-गृहस्थी के भार में दबे स्त्री के वर्णन और विश्लेषण एक ओर है तो, दूसरी ओर द्वापर युग में द्रुपद से अपमानित द्रोणाचार्य, वर्णाश्रम के शिकार एकलव्य, स्वार्थि अंधाभिमानी अर्जुन, ज्ञान के अहंकारी द्रोण, राजनीति के विष सागर में डूबा कुरुवंश की नीव संभाले

---

[5] डॉ.शमली एम.एम, डॉ. शंकरशेष, आधुनिक हिन्दी के प्रतिनिधि नाटककार, पृष्ट. सं. 133

[6] डॉ. रंजना रा. वर्दे, एक और द्रोणाचार्य एक मूल्यांकन, पृष्ट. सं. 27

कुछ भी करने को तैयार भीष्म जैसे पात्रों का विश्लेषण है।[7] साथ ही इस नाटक में आधुनिक विडम्बनाओं दिखवे के जीवन, राजनेताओं का स्वार्थ, अमीरों का दुरभिमान-दुर्व्यवहार आदि विचारों को पौराणिक घटनाओं के साथ तुलनात्मक विश्लेषण है। आधुनिक प्रामाणिक दिखनेवाला अरविन्द का द्रोणचार्य से, लीला का कृपि से, चन्दू का एकलव्य से, राजकुमार का अर्जुन से यहाँ तुलना करके आधुनिक घटनाओं का संघर्ष पुराण कथाओं के साथ कराते हैं। विशेष यह है कि, कृतयुग, त्रेत्रायुग, द्वापरयुग की घटनाएँ और पात्र आधुनिक समाज में भी सशक्त रूप में प्रचलित हैं।[8] दुर्योधन का द्वोष, अर्जुन का वीरत्व, धर्मराज का न्याय, भीष्म की प्रतिज्ञा, शकुनि की राजनीति, कृष्ण का कुटिल न्याय, दुश्यासन का अन्याय, द्रौपदी का अपमान, कुन्ती और माद्री की असहायकाता, गाँधारी का द्वेश, दृतराष्ट्र का अंधा प्रेम, कर्ण का व्यक्तित्व, इंद्र का स्वार्थ, राम का व्यक्तित्व, सीता का त्याग, रावण की नीचता, युद्ध की विभीषिकता, अधिकार या युद्ध के पीछे जाने वालों का नाश, भीम की शक्ति, हनुम की भक्ति क्या नहीं हुआ उस पुराण काल में। फिर भी हम सब चलते है स्वार्थ की राह में ही। विशेष इतना ही है कि, इतिहास और पुराण को भूलकर कभी भी जीवन में लक्ष्य हासिल नहीं होता है। कर्मसिद्धांत पर टिका यह मनुष्य जन्म का विश्लेषण इक्कीसवीं सदी के नाटककार भी उसी प्रकार करते हैं, जिस प्रकार हमारे पूर्वजों ने किया था।[9]

व्यवस्था, राजनीति और सामाजिक संघर्ष को दर्शाने में सर्वेश्वर दयाल सस्केना जी का बकरी नाटक श्रेष्ठ कार्य करती है। जिसमें वर्णाश्रम, देहातों का अज्ञान, युवाओं का संघर्ष, राजनेताओं का श्रीसामान्य के प्रति अन्याय, स्वार्थ साधना हेतु संविधान के तीनों अंग यानी कार्यंग, शासकांग और न्यायांगों को गुलाम बनाकर रखना, ज्ञानोत्कर्ष के साथ गाँववालों का विद्रोह जैसे अनेक विषयों की चर्चा इस नाटक विश्लेषित है। नाटक के पात्र दुर्जनसिंह, कर्मवीर, सत्यवीर, सिपाही, विपती, युवक आदि नाम ही नाटक के उद्धेश्यकी ओर इशार करते

---

[7] शंकरशेष, एक और द्रोणाचार्य, पृष्ट सं. 5-10

[8] डॉ. दशरथ ओझा, हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास, पृष्ट. सं. 140

[9] डॉ. जयदेव तनेजा, समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच, पृष्ट. सं. 59

हैं। भारत का अनपढ़ गाँववालों को अनेकों प्रकार से मूर्ख बनाकर देश नाश पर तुले राजनेताओं पर यह नाटक कारारा प्रहार करता है। गंवॉर विपती की बकरी की चोरी कराकर, उसको गाँधीजी का बकरी का नाम देकर, उसका मंदिर तथा आश्रम बनाकर गरीबों से दान संग्रह करते है इस नाटक में, इस अन्याय का कोई विरोध करता है तो अनेकों प्रकार से उसको डरा धमकाकर दबा देते हैं। आज भी राजनेता प्रवाह आने पर प्रफुल्लित, भूचाल आने बहुत खुश, अकाल पड़ने पर आनन्द प्रकट करते हैं। नाटक का अंत समाजोन्मुखी युवक का संदेश कुछ इस प्रकार है-

“बकरी हमको बना दिया बकरी की में-में ने।

सब कुछ सहना सिखला दिया बकरी की में-में ने।

- राजनेताओं और अमीरों की गुलामी में

छोटी से छोटी रस्सी से भी हर खूँटे के साथ बँधकर

रहना सिखला दिया बकरी की में-में ने। - भविष्य के प्रति सोच नहीं है तो

काँटों में लगी पत्तियां भी खाने के लिए

दर-दर फिरना सिखला दिया बकरी की में-में ने। - श्री सामान्य की असहायक स्थिति

इक टहनी के इशारे पर हर कसाई के साथ चुप-चुप जाना

सिखला दिया बकरी की में-में ने।

सींगे भी हैं चलने वाली छुरी के वास्ते,

यह तक हमको भुलवा दिया बकरी की में-में ने।

- विद्रोह की आग ही नहीं है, कोर्ट में नाथूराम गोड्से का अंतिम वक्तव्य स्वतंत्रता संग्राम के बारे में,

लाला जी औ, नेता जी सब के ऐश-ओ-जश्न में

बोटी-बोटी कटवा दिया

बकरी की में-में ने।

- एमपी, एमएलए और कार्पोरेटरों की तन्ख्वाह और विदेशी यात्रा के बारे में

हर ढोल बज रहे हैं, हमारी ही खाल के,

फिर भी यह सुर मिलवा दिया बकरी की में-में ने।[10]

-कुछ भी हो जाय, चुनाव के समय जाती रुप राक्षस को जगाकर या डरा-धमकार अधिकार हासिल कर लेते हैं। उन्हीं के सुर में हम अंजान अज्ञानी उनके ही गुण गाते रहते हैं। उपरोक्त पंक्तियों में युवावर्ग की हताशा और देश की वस्तुस्थिति वास्तविकता है तो, एक ओर उन्हीं युवाओं में विद्रोह के संबन्ध में भरोसे का किरण भी है- [11]

"दिन में दो रोटी के हों जब देश में लाले पड़े,

हो सभी खामोश सब की जबां पर ताले पड़े,

दिल दिमाग और आत्मा पर इस कदर जाते पड़े,

सूखे की शतरंज नेता खेलें दिल काले पड़े।

तोंद अ़डियल पिचके पेटों पर चलाए गोलियाँ,

हर तरफ फिर न निकलें क्रांतिकारी टोलियाँ

फिर बताओ किस तरह खामोश बैठा जाए है

अब तो खौले खून रह-रहकर जबां पर आए है-

बहुत हो चुका अब हमारी है बारी,

बदल के रहेंगे ये दुनिया तुम्हारी !"[i12]

परिवर्तन के लिए संघर्ष, विद्रोह और क्रांति आज के नाटककारों का मूल तत्त्व मान सकते हैं। अगर यही उद्धेश सही राह पर चले तो सामाज का उद्धार की आशा कर सकते हैं। इस महान् देश हित विद्रोह में मीडिया का हाथ बहुत बड़ा है।

---

[10] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, बकरी, पृष्ट. सं. 45

[11] डॉ. जी. जे. हरिजीत, संभवामी युगे युगे, पृष्ट सं. 7

[12] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, बकरी, पृष्ट. सं. 56

डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी द्वारा रचित भारत दुर्दशा नम्बर दो एकांकी में आज की भारतीय परिस्थिति पर व्यग्य है। प्रगतिशीलता, प्रतिबद्धता और मानसिक द्वंद्व के लिए सामाजिक कारण बहुत मिलते हैं। इन तनाओं से मुक्त शांत जीवन की अपेक्षा डॉ. तिवारी अपने नाटकों में करते हैं।

उपसंहार :

भारतीयता के बदलते परिप्रेक्ष में नाटकों के समसामायिक परिवेश के प्रति विमर्शा प्रकट करना बहुत ही कठिण है। एक ओर नाटक विधा की शिल्पगत नव्यता, बहु प्रकार के प्रयोग शीलता, विषय चयन में विविधता और मंचीकरण में विज्ञान और इंटरनेट की विशेषता, अन्य रियालिटी शो जैसे प्रकारों से संघर्ष जैसे अनेक विषय मौलिक और मानवीय संबन्धों से परे नज़र आ रहे हैं। तत्त्व, संस्कृति, ग्रन्थ, समीक्षात्मक दृष्टिकोन का अभाव आज के मंचस्थ नाटकों में खटकता है। देश, काल तथा वातावरण साहित्य सर्जना पर अपना प्रभाव डालता ही है। तदनुसार समकालीन नाटकों में मानवीय संबन्धों के सुप्रस्तुति के बदले विकृति का विसंतोष तांडव नृत्य कर रहा है। कालेज में साहित्य संबन्धी सेमिनार या ग्रन्थ विमोचन होता है तो उसका मीडिया पर प्रचार नहीं होता। ऐश्वर्या रै सैकल से गिरती है तो उस दृश्यका लैव कवरेज़ करके विशेष अतिथियों के विकृत अभिप्रायों को तीन महिने तक भी चला सकते हैं। उदाहरण शीना बोरा केस लीजिए। देश के प्रत्येक नागरिक को अनिवार्यतया उस विवेचना हीन विषय की ओर आकर्षित करवाते रहते हैं। इन्हीं कारणों के चलते युगीन परिस्थितियाँ, सामाजिक विसंगतियाँ सामाजिक मूल्यों को गौण बनाके रखे हैं। आज के नाटकों में सामान्यतया संवाद, टकराहट, अश्लीलता जी ज्यादा मंचस्थ दिखाई देता है। स्वतंत्रता पूर्व नाट्य सृजन काल में पारस्परिक संवेदनात्मक जीवनमूल्यों की सक्रीयता के प्रति समर्पण भावना थी, उसका लोप हो रहा है।

सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, साहित्यिक आदि मूल्यों का द्वन्द्वात्मक चित्रण आज का नाटक कर रहा है। यहाँ तक कह सकते हैं कि जाती जरासंध के ज्वार में हम सब विचारहीन असहिष्णु अज्ञानी बनकर बिना दृष्टि आधुनिकता के दिवार से टकरा रहे हैं। सामाजिक मूल्यों के लिए ज्ञान मार्ग द्वार होने पर भी क्षणिक स्वार्थ की ओर आकर्षित होकर विनाश की ओर हम सब खिसक रहे हैं। आज के नाटककार राजनैतिक और सामाजिक जीवन में व्याप्त विषमताएँ, असमानता, भूक, गरीबी, आतंकवाद, सुरक्षा, संप्रदाय तथा अलगाववाद, प्रकृति

और प्रदूषण की समस्याओं से आकर्षित हुआ है। 80 प्रतिशत आज के नाटककार मध्यमवर्गीय समस्याओं को अपने नाटकों में दर्शाना चाहता है। जिसमें आर्थिक, राजनैतिक, स्त्री-पुरुष संबन्दी और ऐतिहासिक तथा पौराणिक घटनाओं को तौलने का प्रयत्न कर रहा है। राजनेताओं के भ्रष्टाचार और घोटाले, और इनके साथ न्यायांग और पुलिसवालों का मेलझोल आज के दृश्यकाव्य में सामान्य विषय हैं।

आज भी सामाजिक नारी शोषण और उत्पीडन – यानी निर्भया काण्ड के जैसी घटनाओं को लेकर देश के अनेक मंचों पर आक्रोष दिखाई दे रहा है। यह सही भी है। कुछ दिनों में सशक्त भारतीय नारी शनि शिंगनापुर और केरल के अय्यप्पा के दर्शन के मार्ग में अपने को समाज में मंचस्थ कर सकती है। ऐतिहासिक और पौराणिक पात्र, विषय और घटनाओं को लेकर आज के नाटककार में रुचि दिखाई नहीं दे रही है। कारण स्वयं भारत के इतिहास के तोडमरोडकर लिखनेवाले इतिहासकार ही जाने या पौराणिक पात्र और घटनाओं को अपने राजनैतिक या आर्थिक स्वार्थ तथा प्रचार के लिए तड़पनेवाले साहित्यकार ही जाने। शायद नाटककारों में भी मॉ---- ग्रूप बना हुआ है। मॉ ग्रूप का अर्थ है-----।[13]

पता नहीं क्यों? आज का नाटककार परम्परा से अनुमोदित मूल्यों को स्वीकारता भी नहीं, बल्कि उनके प्रति विश्वास रखने वालों को दिक्कारता जरूर है। पाप-पुण्य, झूठ-सत्य, अप्रामाणिकता और नेकी, नीति-अनीति इन सबको जानते हुए भी वह भोगने योग्य सत्य, मुखौटे की जिन्दगी, ओढ़े हुए मूल्यों की वकालत करता है। और भयंकर डरावने विश्वास से साथ दूसरों पर उनको थोपने का प्रयत्न भी करता है। इन कारणों से नाटककार अत्याचार, अनीति, भ्रष्टाचार, पापाचार का विरोध तो करता है, मगर जीवनादर्श की स्थापना करने में सच्चे मन से सक्षम त्याग से सिद्ध नहीं होता। क्षणिक जीवन में दुश्मनी को दूर रखने के लिए जागृत रहना जरूरी है। नाटक में नाटकीयता होने पर भी जीवन में नाटकीयता सह्य नहीं है। क्यांकि सत्य का उज़ागर होके ही रहता है।

नाटक में नव्यता के नाम पर रचना के मूल उद्धेश्यकी सार्थकता को भूलना भारत के भविष्य के लिए अपराध समान ही है। रंगमंच पर सुव्यवस्थित धरातल पर अभिनय नाटक का मूल तत्त्व हो सकता है। विकृत असत्य भी अभिनय द्वारा लोकप्रियाता प्राप्त कर सकती है या तात्कालिक जन सहानुभूति पा सकती है। इस इक्कीसवीं सदी के नाटकों में विचार और आचार, समझदारी और इमानदारी, करुणा और सहानुभूति, घृणा और

[13] डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी, मीडियोत्सव, पृष्ट. सं. 87

प्रेम, मैत्री और संघर्ष समान रूप में प्रस्तुत हो रहे हैं। श्री दया प्रकाश सिन्हा द्वारा लिखित रक्त अभिषेक नाटक में नीति और अनीति का संगर्ष दिखाई देता है। श्री प्रताप सैगल के कोई और रास्ता नाटक में आधुनिक लडकी की मनोदशा का वर्णन किया गया है। श्री विजय तेंडूल्कर के विट्ठला नाटक में सामाजिक समस्याओ, अंधविश्वासों का विश्लेषण और तिरस्कार किया गया है। इन नाटककारों के विषय चयन और नाटक रचना के उद्धेश्यपर चर्चा करे तो हमें यह समझ में आ जाता है कि- नाटक जीवन की समस्याओं, विसंगतियो, विडंबनाओं और विषमता आदि कष्टों का साक्षात्कार होते हुए दार्शनिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक समस्याओं के साथ मानवीय विचारधाराओं के प्रति विशेष बल देने की अपेक्षा रखता है, जो मूल में सामाजिक मूल्यों का परिष्कार हीं है।

1997 में प्रकाशित व्यंग्यकार डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी जी अपने एकांकी संकलन मिडियोत्सव में संगृहीत एकांकियों के शीर्षक से ही, जैसे - भारत दुर्दशा नंबर दो, वर सेलेक्शनम, गेम बुखार, नया कालिदास, क्रिकटेरियाका भूत, रिसर्च जारी है, पति प्रदर्शनी, महीने का बजट, आईडिया फेल हो गया से पता चलता है कि मध्यमवर्गीय सामाजिक समस्याओं पर व्यंग्य किया गया है। 2002 डॉ. तिवारी जी से में प्रकाशित फिल्मेरिया तथा अन्य हास्य नाटिकाएँ एकांकी संग्रह में अपने समाज सुधारक व्यग्य कर्म को आगे बढ़ाये हैं।

समष्टि में हम यह कह सकते हैं कि, आज का रंगमंच टीवी और सिनेमा के क्षेत्र में विस्तारित हो रहा है। साथही सोशियल मीडिया की ओर भी जनता का आकर्षण है। इन दोनों क्षेत्रों में प्रेक्षक और रंगकर्मी दोनों सृजन कार्य कर रहे हैं। भूमंडलीकरण के बदलते सामाजिक जीवन का दर्शन टीवी और सोशियल मीडिया में दिख रहा है। युवा वर्ग इन आकर्षणों में अपने आप को देखना चाहते हैं। भारतीय सभ्यता संस्कृति का तोड़ मरोड़ आज की मीडिया कर रहा है। डिजिटलैजेशन और अंतर्जाल के इस माहोल में समाजिक मूल्यों को परखना आसान नहीं है। सुशील सदृढ़ समाज हेतु आशावादियों का आशा की किरन कायम रहेगा।